❀ ओ३म् ❀

ऋग्वेद　　　　　　　　　　　　　　　　यजुर्वेद

* कृण्वन्तो विश्वमार्य्यम् *

ईश्वर निरूपण ।

लेखक—

महाशय जीवनदास

प्रधान—आर्योपप्रतिनिधि सभा वाराणसी ।

प्रकाशक—

आर्योपप्रतिनिधि सभा, जिला बनारस ।

सृष्टि संवत्:—१९७२९४९०५७,

विक्रम संवत्:—२०१३, दयानन्दाब्द १३२,

प्रथमवार १०००]　　　नवम्बर १९५६　　　[मूल्य =)

सामवेद　　　　　　　　　　　　　　　　अथर्ववेद

निवेदन।

महानुभाव ! यह छोटासा निबन्ध ईश्वर के सम्बन्ध में प्रकाशित कर आप की सेवा में समर्पित करने का विचार मेरे हृदय में उत्पन्न हुआ। पर मैं सोचता था कि न तो मैं प्रकृष्ट विद्वान् हीहूँ, और न कोई प्रौढ लेखक ही हूँ। पुनरपि मेरी हार्दिक अभिलाषाओं ने मुझे बाध्य किया। और मन में एक भाव जागरित हुआ—कि भगवान् बुद्ध की २५०० (पचीस सौ) वर्षीय स्वर्ण–जयन्ती के शुभ अवसर पर आये हुये अतिथि भाइयों की सेवा में अपने विचारों की भेंट, जिला आर्योपप्रतिनिधि–सभा बनारस की ओर से अर्पण करूँ।

सज्जनों ! ईश्वर के सम्बन्ध में अनेक सुन्दर सुन्दर पुस्तकें बड़े बड़े विद्वानों द्वारा छपती रहती हैं, किन्तु सरल भाषा में छोटे छोटे निबन्ध जिनसे कि सारी जनता लाभ उठा सके, बहुत कम दिखाई देते हैं। यद्यपि मेरे लिये यह "छोटा मुँह बड़ी बात" है। तथापि हमारे कर्मठ एवं आदरणीय नेता "श्री रामजी प्रसाद गुप्त" मुगलसराय–निवासी ने जो आज कल उत्तरप्रदेश-आर्यप्रतिनिधि-सभा के कोषाध्यक्ष हैं, प्रेरणा कर मुझे उत्साहित किया, और साथही आर्यसमाज बुलानाला बनारसके भूतपूर्व प्रधान, आचार्य श्री पं० देवदत्त शर्मोपाध्याय जी, प्राध्यापक (गवर्नमेंण्ट संस्कृत कालेज वाराणसी) ने सहयोग देने का वचन दिया। तथा माननीय श्री लाला सन्तरामजी अरोड़ा (काशी ग्रामोफोन स्टोर बुलानाला) के मालिक ने धन की सहायता दिलवाकर प्रकाशित कराने का वचन दिया। अतः मैं यह छोटा सा निबन्ध आपके समक्ष उपस्थित कर रहा हूँ। यद्यपि मेरे विचार आप लोगों के सामने पाण्डित्यपूर्ण न होंगे, तथापि मैं आशा करता हूँ कि आप मेरी त्रुटियों पर ध्यान न देते हुए इसे स्वीकार कर मेरा उत्साह बढ़ाने की कृपा करेंगे। साथही उन महानुभावों को जिन्होंने कि मुझे विविध सहायतायें प्रदान की हैं, मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। इसके अतिरिक्त मैं अपने श्रद्धेय गुरु-वर्य्य 'श्री स्वामी गोविन्दरामजी' श्रीनगर काश्मीर निवासी का अत्यन्त ऋणी हूँ, जिन्होंने कि मुझे बाल्यकाल में शिक्षा देकर अनुगृहीत किया है।

जीवनदास

प्राप्ति–स्थान—
देशबन्धु कपड़ा विक्रेता
दुकान नं० ३४ मैदागिन वाराणसी।

॥ दो शब्द ॥

महोदय !

मैंने महाशय जीवनदास जी द्वारा लिखे गये इस ईश्वरविषयक निबन्ध को आद्योपान्त भलीभांति पढ़ा, और पूर्णतया शोधा भी। निबन्ध को पढ़कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, कि उक्त लेखक महानुभाव ने इस निबन्ध को लिख कर जनता में एक बड़ी भारी कमी को पूरा किया है। वस्तुतः इस प्रकार के गम्भीर एवं जटिल विषयों पर छोटे २ ऐसे लघुकाय निबन्धों के लिखने की परमावश्यकता थी, जिस को कि लेखक महाशय ने दूर करने का प्रयास किया है। निबन्ध में विशेष कर साधारण से साधारण सर्वप्रसिद्ध लौकिक उदाहरणों का आश्रय लिया गया है, जिससे कि यह निबन्ध सर्व साधारण के लिए परमोपयोगी सिद्ध होगा।

दूसरे इस निबन्ध की एक विशेषता यह भी है, कि यह निबन्ध इस दृष्टि से लिखा गया है, कि प्रत्येक धर्मावलम्बी इससे लाभ उठा सकता है, और उस प्रभु के अस्तित्व को जान सकता है।

आशा है कि जनता (जिज्ञासुजन) इससे लाभ उठाकर लेखक के स्तुत्य परिश्रम को सफल बनावेगी।

आचार्य-देवदत्त शर्मोपाध्याय

प्राध्यापक—

राजकीय-संस्कृत-महाविद्यालय वाराणसी

२५—११—५६

❀ ओ३म् ❀

ईश्वर निरूपण।

प्यारे भाईयो !

आज मैं ईश्वर–विषयक एक छोटा सा निबन्ध आपके समक्ष उपस्थित करता हूँ।

साधारण—उदाहरण।

मुझे सब से पूर्व यह कहना है कि कोई व्यक्ति आपसे यह कहता है कि इस नगर में एक ऐसा कारखाना है, जिसका कि न कोई स्वामी, न कोई इञ्जीनियर और न कोई मिस्त्री है, सारा कारखाना स्वयं ही बन गया है, सारी कलें अपने आप बन गई हैं, सारे पुर्जे अपने अपने स्थान पर लग गये हैं, और स्वयं ही नाना प्रकार की वस्तुएँ बन बनकर निकल भी रही हैं। तथा स्वयं आर्डर बुक भी हो जाते हैं। और माल की सप्लाई भी अपने आप ही होती रहती है। रक्षा करनेवाले के विना भी सब सामान सुरक्षित रह सकता है इत्यादि। अब आप अपने हृदय से पूछिये कि क्या किसी की कोई ऐसी बात मानी जा सकती है ? क्या यह आपकी समझ में आ सकता है, कि विना बनानेवाले के बन भी सकता है, विना मिस्त्री के लगाये पुर्जे लग भी सकते हैं, किसी आर्डर लेनेवाले के विना आर्डर लिए भी जा सकते हैं, और माल भी सप्लाई हो सकता है, रक्षाकरनेवाले के विना रक्षा भी हो सकती है। सच बताइए–जो व्यक्ति आपसे ऐसी बात कहेगा, तो क्या आप उसके चेहरे की ओर चकित होकर

नहीं देखने लगेंगे ? क्या आपको यह सन्देह नहीं होगा— कि इसको कहीं उन्माद रोग तो नहीं हो गया ? क्योंकि ऐसी बातें दूसरा तो कोई कह ही नहीं सकता । अच्छा दूर के उदाहरणों को छोड़िये यह बिजली का लट्टू जो आपके घरों में जलता है, क्या किसी के कहने से आप मान सकते हैं। कि प्रकाश लट्टू में अपने आप उत्पन्न हो जाता है ? । कुर्सी जिस पर आप बैठते हैं, क्या किसी बड़े से बड़े तार्किक के कहने से आप विश्वास कर सकते हैं कि यह स्वयं बन गई। ये कपड़े जो आप पहने हुए हैं क्या किसी प्राधानाचाय के कहने से यह मानने को तैयार हो जायेंगे कि इनको किसी ने बनाया नहीं, अपितु ये स्वयं ही बन गये। ये भवन, जो आपके सामने खड़े हैं यदि सारे संसार के विश्वविद्यालयों के कुलपति (चान्सलर) आपको यह विश्वास दिलायें कि इन भवनों को किसी ने नहीं बनाया, ये स्वयं ही बन गये हैं। तो क्या ऐसी बातों के विश्वास दिलाने से आप इस प्रकार की झूठी बातों को मानने पर उद्यत हो जायेंगे ?

उ०—कदापि नहीं, महानुभाव मैं तो यही समझता हूँ, कि ऐसा मानने को आप कभी तैयार न होंगे।

लौकिक—आधार ।

उपर्युक्त उदाहरण जो आपके सामने अभी कहे हैं, जिन्हें कि आप दिन रात देखते हैं इनमें कही गई वस्तुयें क्या ये स्वयं अपने आप सिद्ध हो सकती हैं । अब विचार कीजिए—कि एक साधारण से कारखाने के सम्बन्ध में आप में से कोई यह मानने को तैयार नहीं हो सकता—कि यह किसी बनानेवाले के बिना ही बन जायगा, और किसी चलानेवाले के बिना ही चलता रहेगा। तब बतलाइए, इतने बड़े ब्रह्माण्ड रूपी कारखाने के सम्बन्ध में कैसे आप मान सकते हैं, कि ये सब कुछ बनानेवाले के बिना स्वयं ही बन गया है, और किसी चलानेवाले के बिना स्वयं चल रहा है।

एक छोटीसी कुर्सी, एक गज भर वस्त्र, एक छोटी सी भींत (दीवार) के सम्बन्ध में जब कोई आपसे कहता है-कि-ये चीजें स्वतः बन गईं, तो आप तुरन्त कह उठेंगे कि इसका मस्तिष्क विकृत है। क्योंकि मस्तिष्क के विकार में सन्देह भी क्या हो सकता है, जब कि वह यह कहता है कि उपर्युक्त चीजें स्वयं बन गईं, पृथ्वी स्वयं बन गई। बड़े २ वृक्ष जो उत्पन्न होते रहते हैं, नाना प्रकार के पौधे, रङ्ग विरङ्गे फूल, भिन्न २ प्रकार के पशु, उड़ते हुए आकाशमण्डल में पक्षी, जो कि अपनी मधुर धुन में भांति २ के मधुर गान करते रहते हैं, तथा समुद्र में रहनेवाले जीव और यह मनुष्य का इतना सुन्दर शरीर, क्या ये सब के सब अपने आप तैयार हो गये।

उ०—कदापि नहीं। ये किसी के विना बनाये नहीं बन सकते।

शरीर-सम्बन्धी—उदाहरण।

महानुभाव! थोड़ा और विचार कीजिए-इस शरीर की बनावट तथा सजावट पर। वैज्ञानिकों ने जब इसकी जाँच की, तो निर्णय किया कि इसमें कुछ चर्वी, कुछ लोहा, कुछ कोयला, कुछ गन्धक, कुछ नमक, कुछ चूना और कुछ गैसें तथा कुछ ऐसे पदार्थ हैं, जिनका मूल्य बहुत थोड़ासा है। क्या कभी आपने सोचा कि माता की गर्भरूपी छोटीसी फैक्ट्री में किस प्रकार यह शरीर बनता है। पिता का कौशल इसमें कोई काम नहीं देता। माता के चातुर्य का भी इसमें कोई हस्तक्षेप नहीं होता। वैज्ञानिकों का कहना है कि एक छोटीसी झिल्ली में दो प्रकार के कीड़े जो दूरवीक्षण यन्त्र (खुर्दवीन) के बिना देखे तक नहीं जा सकते, न जाने कब आपसमें मिलजाते हैं। माताके आहारही से इसको आहार मिलना आरम्भ हो जाता है। उसी से चर्वी, लोहा आदि जो कि ऊपर लिखा है, बनता रहता है। विशेष तोल व नाप के हिसाब से एक लोथड़ा बन जाता है। पुनः इस लोथड़े में जहाँ आँख बननी चाहियें, वहाँ आखें बनती हैं जहाँ कान बनने चाहियें, वहाँ कान बनते हैं, जहाँ मस्तिष्क बनना

चाहिये वहाँ मस्तिष्क बनता है। अर्थात् हरएक पुर्जा अपने २ स्थान पर ठीक २ बनता रहता है, चेतन आत्मा के प्रवेश के कारण देखने की शक्ति, सुनने की शक्ति, चखने और सुंघने का ज्ञान, बोलने की सामर्थ्य, सोचने और अनुभव करने का ज्ञान-इस प्रकार की अनेक शक्तियां इस में आ जाती हैं। और इस प्रकार यह नियत-समय में परिपूर्ण हो जाता है। बस यही माता के गर्भ की एक छोटीसी फैक्ट्री है। जहाँ लगभग २८० दिन अर्थात् ९ महिने १० दिन तक यह गर्भ बनता रहता है। और पूर्ण हो जाने पर प्रबल चेष्टा कर बाहर आ जाता है। संसार यह देखकर चकित हो जाता है कि एकही प्रकारके गर्भमें लाखों मनुष्य पैदा होते रहते हैं। किन्तु हर मनुष्य का नमूना रङ्ग, बोली, शक्तियां, योग्यता, स्वभाव, आचार विचार तथा गुण भिन्न भिन्न हैं। अभिप्राय यह है-कि दो सगे भाई तक भी आपस में समान अर्थात् एक से नहीं होते। इस रचना को देखकर भी क्या आप यह मान सकते हैं, कि केवल इन जड़ पांच भूतों से बना हुआ ही यह मनुष्य-शरीर देखता, सुनता, बोलता और चलता, फिरता रहता है, और यही आकाश में उड़ने वाले वायुयान, रेडियो, टेलीविजन, अणुबम, परिमाणु बम जैसे भयानक शस्त्रों, आश्चर्य जनक यन्त्रों को बनाकर तैयार कर देता है।

उ०—बन्धुवर्ग ! कदापि नहीं। उस महान् शक्तिशाली और अपार ज्ञान के भण्डार, सारे विश्व के कण २ में व्यापक चेतनशक्ति के विना कभी भी इस शरीरादि ब्रह्माण्ड की रचना नहीं हो सकती, और न कोई समझदार इसको मानने को ही तैयार है-कि यह रचना स्वतः हो गई।

वैज्ञानिक—विचार।

अब कुछ ऊपर और नीचे की ओर दृष्टिपात कीजिये। यही पृथ्वी जिस पर हम बसे हैं, इसी में स्थित हिमालय पर्वत को ले लीजिए, उस की एक कन्दरा का भी पार पाना कठिन है। हिमालय का तो क्या कहना, किन्तु इससे पहिले समुद्र पर दृष्टि डालिये, जिसमें कि ऐसे कितने

ही हिमालय-पर्वत समा सकते हैं, और जिसमें कितनीही नदियों का समावेश निरन्तर होता रहता है। तथा यह पृथ्वी भी कितने ही पहाड़ों व जङ्गलों से भरी पड़ी है, और अनेकानेक देश देशान्तर इस पर बसे हैं, जिनका कि कोई अन्त नहीं पा सकता।

अब आप आकाश मण्डल की ओर निहारिये, ये करोड़ों सितारे जो हमारे ऊपर भ्रमण करते दृष्टिगोचर होते हैं, यह चन्द्रमा जो कि रात्रि में प्रकाश देता है, सूर्य चमकता हुआ प्रतिदिन उदय होता है। जो कि इस पृथ्वी से १३ लाख गुना बड़ा माना गया है। अर्थात् १३ लाख पृथ्वी एक सूर्य में समा सकती हैं, और सूर्य हमारी पृथ्वी से नौ करोड़ मील दूर है, इसकी एक किरण पृथ्वी में लगभग ५ मिनट में आती है। कई तारे भी ऐसे हैं, जिनका कि प्रकाश हमारी पृथ्वी पर प्रतिदिन पड़ता है। किन्तु कई ऐसे भी हैं जिनका कि प्रकाश ७ दिन और कईयों का १ माह, १ वर्ष और १०० वर्ष के पश्चात् यहां पहुंचता है। अब विचारिये कि कितना बड़ा यह विस्तृत संसार है। जिसका कि उस अगम्य अगोचर के अतिरिक्त कोई पार नहीं पा सकता। देखिये! ये सप्तर्षि नाम के तारे ध्रुव, मङ्गल, शुक्र और अन्य अगणित तारे जो कि गेंद की भांति इस गगन मण्डल में घूम रहे हैं, इन सबके घूमने में उस जगन्नियन्ता का कैसा कड़ा नियम लागू है। क्या कभी आपने रात्रि अपने समय से पूर्व आती हुई देखी। कभी दिन समय से पहले निकला, कभी चन्द्रमा पृथ्वी से टकराया ?, क्या कभी और सितारों को आपने एक बाल बराबर भी अपने घूमने की परिधि से हटते हुए देखा या सुना!

उ०—कदापि नहीं। यदि ऐसा हो जाता, तो यह संसार क्षण भर में ध्वस्त हो जाता।

—:❀:—

वैज्ञानिक—उदाहरण।

प्रिय वन्धु ! और भी सूनिये ये असंख्य सितारे जिनमें से कई हमारी पृथ्वी से लाखों गुना बड़े हैं। इनमें एक अगस्त्य नाम का तारा भी है, जो कि हमारे सूर्य से १ करोड़ गुना बड़ा सुना जाता है, इससे भी बड़ा एक 'जेष्ठा' नाम का तारा है। ये सब घड़ी के पुर्जों की भांति एक कड़े नियन्त्रण में कसे हुए और बंधे हुए ठीक नियम के अनुसार अपनी २ गति के साथ अपने २ रास्ते पर चल रहे हैं। न किसी की गति में थोड़ा सा भी अन्तर आता है. न कोई अपने रास्ते से बाल बराबर भी टल सकता है। भगवन्! इनके बीच जो सीमा नियत कर दी गई है, यदि इसमें एक पल के लिए थोड़ा सा भी अन्तर आ जाय, तो समग्र संसार का प्रवन्ध इस प्रकार नष्ट भ्रष्ट हो जाय। जिस प्रकार कि आपस में रेल गाड़ियां टकरा कर नष्ट भ्रष्ट हो जाती है।

देखिये ! किसी रेलवे कम्पनी को ही ले लीजिए। उसमें कितना प्रवन्ध होता है, स्टेशन मास्टर नियत किये हुए हैं, इसके अतिरिक्त तार फोन द्वारा सूचना भी दी जाती है, और एक गोला जिसके बिना लिए गाड़ी आगे चलही नहीं सकती, उसका भी प्रबन्ध रहता है, बड़े बड़े नियन्त्रण कर्ता भी इसकी हर समय देखरेख करते रहते हैं, इतना प्रबन्ध होने पर भी गाड़ियां समय समय पर टकराती ही रहती हैं। परन्तु सूर्य चन्द्रादि ब्रह्माण्ड के नियमित कार्यों में कोई भी अन्तर नहीं आता। यह है उस अपार प्रभु का नियन्त्रण, कि जिसकी इच्छा के विना पत्ता भी नहीं हिल सकता।

ये तो रहीं ब्रह्माण्ड की बातें, अब आप अपने और इस गोळारूपी पृथ्वी पर विचार कीजिए। इस मिट्टी की गेंद पर जो सारे जीवन के खेल आप देख रहे हैं, ये सब किसी एक नियन्त्रण में बंधे हुए स्थिर हैं। पृथ्वी की आकर्षण शक्ति ने सारे पदार्थों को अपने घेरे में बांध रक्खा है, एक क्षण के लिए भी यदि यह अपनी पकड़ छोड़ दे, तो सारा विश्व

तितर बितर हो जाय। इस जगत् में जितने कल पुर्जे कार्य कर रहे हैं, सारे के सारे एक नियम के आधीन हैं, और इस नियम में कभी अन्तर नहीं आता। वायु अपने नियम से बंधी है। पानी अपने नियम का पालन करता है। प्रकाश के लिये जो नियम है, वह उसका नियमित है। सर्दी गर्मी का जो समय है, वह ठीक नियमानुसार अपनी ऋतुओं पर बदलता है, अन्यथा नहीं।

पदार्थों का परस्पर सहयोग।

मिट्टी, पत्थर; धातु, वृक्ष, पशु, पक्षी किसी में यह शक्ति नहीं कि वे अपना स्वभाव बदल दें, या जो काम उनके ऊपर नियत किया है, उसको छोड़ दें। अपनी २ सीमा के अन्दर अपने २ नियम का पालन करते हुए इस ब्रह्माण्ड के सभी पुर्जे एक दूसरे के साथ मिलकर काम कर रहे हैं, और संसार में जो कुछ भी हो रहा है, इसी कारण से हो रहा है—कि ये सारे पदार्थ और सारी शक्तियां मिलकर काम कर रही हैं। परन्तु इन को मिलानेवाली कोई शक्ति है, और उसी को ईश्वर कहते हैं। आप एक छोटे से बीज का ही उदाहरण ले लीजिये जिसको आप पृथ्वी में बोते हैं, वह पालन पोषण होने पर भी तब तक बन ही नहीं सकता, जब तक पृथ्वी उसे पूरा सहयोग न दे, जल उसकी सहायता न करे, सूर्य उसे उष्णता न दे, चन्द्रमा अपने शीतल कणों के द्वारा उसे ठण्डक न पहुँचाये। ये सब के सब परस्पर सहयोग से रात और दिन उसे गर्मी सर्दी देकर मिलजुल कर पालते हैं, तब जाकर कहीं वृक्ष बन पाता है, और उसमें फल आते हैं। आपकी ये सारी फसलें जिनके आधार पर हम जीते हैं अगणित सहयोगी शक्तियों के सहयोग देने के कारण से ही तैयार होती हैं। हम सब जीवित इसी कारण से हैं-कि सारी की सारी शक्तियां हमारे पालन पोषण में लगी हुई हैं। यदि एक ही वायु सहयोग न दे, तो हम सब नष्ट हो जावें। यदि जल, वायु, अग्नि मेल करने का विरोध कर दें, तो पानी एक बूंद भी न बरस

सकेगा । यदि मिट्टी जल के साथ सम्बन्ध तोड़ दे, तो सब बाग बगीचे
खेत आदि सूख जावें, और न कोई मकान ही बना सके । यदि दिया-
सलाई की रगड़ में या किसी और साधन से आग पैदा होने में उसकी
इच्छा न हो, तो हमारी रसोई बननी बन्द हो जाय, हमारे सारे कार-
खाने एकदम बन्द हो जावें । यदि लोहा आग के साथ अपना सम्बन्ध
तोड़ दे,तो सारी रेलगाड़ियां, मोटरें और सब मशीनरी समाप्त हो जावे,
परिणाम यह है कि सारा संसार जिसमें कि हम जी रहे हैं, केवल इसी
कारण स्थिर है—कि सृष्टि के सुन्दर निर्माण के सारे के सारे कार्यालय
एक दूसरे के साथ मिलकर पूरा सहयोग दे रहे हैं । किसी भी तत्त्व में
यह शक्ति नहीं—कि दूसरे से मिलकर काम न करे । यदि यह सच है,
तो बतलाइये, यह इतना बड़ा प्रबन्ध, यह आश्चर्यजनक नियन्त्रण, यह
पञ्चतत्त्वों का मिलाव, यह पृथ्वी और ऊपर के तारों तथा अनगिनतिन
सितारों एवं सारी शक्तियों का नियमपूर्वक परस्पर सम्बन्ध—यह सब
का सब वस्तुतः किस कारण से है !

उ०—बस जिसके कारण है, हम उसी को ईश्वर कहते हैं ।

उपर्युक्त कथन की संपुष्टि ।

लगभग दो अरब वर्षों से यह सृष्टि चली आ रही है, करोड़ों वर्षों
से खानें बनती आ रही हैं, वृक्ष उत्पन्न हो रहे हैं, मनुष्य, पशु, पक्षी,
जलचर उत्पन्न होते रहते हैं, और इस पृथ्वी पर जी रहे हैं । कभी
ऐसा न हुआ कि चाँद पृथ्वी पर गिरा हो, पृथ्वी सूर्य से टकराई हो,
या कभी दिन व रात के गणित में रत्ती भर अन्तर आया हो । अर्थात्
जितने भी नियम इस सृष्टि के आरम्भ से चले आये हैं, क्या आज तक
किसी में आपने कोई परिवर्तन देखा है, जैसा कि हम ऊपर कह आये
हैं । सज्जनवृन्द ! इन सब लिखे उदाहरणों पर विचार कीजिये, तो आप
स्वतः मानने पर उद्यत हो जायेंगे, कि इस ब्रह्माण्ड को बनानेवाली
कोई निराकार महान् चेतन-शक्ति है, और वह एक है, जो सारे विश्व

के कण कण में एक रस रमी हुई है, और वास्तविकता यही है कि वही इसको अपने नियन्त्रण में चला रही है, उसी को सच्चिदानन्द कहते हैं, अर्थात् (१) सत् (२) चित् (३) आनन्द। तीनों कालों में रहने वाले को सत् कहते हैं, और ज्ञानवाले को चित्, एवं तीनों कालों में दुःख के अत्यान्ताभाव को आनन्द कहते हैं, और वह आनन्द जिसमें हो, बस वही आनन्दमय ईश्वर है।

ईश्वर-विषयक नास्तिक का—प्रश्न।

वादी यहां पर शङ्का करता है—कि तीनों कालों में ईश्वर का प्रत्यक्ष तो होता ही नहीं, और जिसका प्रत्यक्ष न हो, उसे अनुमान से कैसे जान सकते हैं। क्योंकि प्रत्यक्ष से व्याप्तिरुप सम्बन्ध को जानकर पुनः उसके अनुकूल अनुमान होता है। जिसका प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों प्रमाणों से ज्ञान न हो, उसके लिए शब्द-प्रमाण हो ही नहीं सकता। जब ईश्वर को प्रमाण से जानही नहीं सकते, तब ईश्वर का होना सत्य कैसे हो सकता है, जब यह बात है, तो जगत् का बनाना ईश्वर से कैसे मान सकते हैं?

ईश्वर का सद्भाव।

उ०--परन्तु जब वादी से पूछते हैं कि क्या जिन वस्तुओं का इन्द्रियों से ज्ञान न हो, वे नहीं होतीं, जिस कारण कि इन्द्रियों से न देखने पर तुम ईश्वर की सत्ता का निषेध करते हो। यदि यह ठीक है तो बताइये, उन इन्द्रियों को किस प्रमाण से जानते हो। यदि कहो इन्द्रियों को इन्द्रियों से देखते हैं, तो आत्माश्रय दोष है, अर्थात् स्वयं ही दृश्य वस्तु स्वयं ही देखने का साधन नहीं हो सकती। यदि कहो हम शीशे में अपनी आँखों को देखते हैं, इस कारण आँख का होना आँख से ही प्रतीत होता है, तो यह कथन सत्य नहीं। क्योंकि दर्पण में आँख नहीं दीखती, किन्तु आँख का आभास होता है। इस कारण अनुमान के

द्वारा जानना तो मान सकते हैं। अतः यह कहना सत्य होगा कि आँख के आभास को देखकर उससे आँख के होने का अनुमान करते हैं।

अस्तु आँख का तो अनुमान से भी ज्ञान हो गया, किन्तु रसनेन्द्रियों का किससे ज्ञान होगा, न तो वह रूप है, जो कि आँख से दीखे, और न शब्द है जिसका कान से ज्ञान हो सके। प्रयोजन यह है—कि रसनेन्द्रियादि का ज्ञान किसी भी इन्द्रिय से नहीं हो सकता। ऐसी ही अन्य इन्द्रियों की भी दशा है। जब इन्द्रियों से न दीखने के कारण परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते, तो वे तुम्हारी इन्द्रियाँ ही यदि प्रत्यक्ष नहीं, तो आपका सिद्धान्त स्वयमेव खण्डित हो जाता है।

इसके अतिरिक्त जो पुरुष ऐसा विचार रखता है—कि प्रत्यक्षही सब प्रमाणों का मूल है, और जिस वस्तु का प्रत्यक्ष न हो उसका अभाव है, वह बहुत ही भ्रान्ति में पड़ा हुआ है। क्योंकि प्रत्यक्ष से किसी भी वस्तु का अनुमान के विना ज्ञान ही नहीं हो सकता। प्रत्येक वस्तु के एक ही भाग का प्रत्यक्ष होता है, शेष का अनुमान से ज्ञान हुआ करता है। यदि केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण माना जावे, तो किसी वस्तु का भी ज्ञान न हो सकेगा।

अनुमान व शब्दप्रमाण।

दूसरे अनेक ऐसी दशायें हैं जिनके कारण वस्तु के विद्यमान होने पर भी उसका ज्ञान नहीं होता। उन को दिखाते हैं। प्रथम–अतिसमीप होने से वस्तु नहीं दीखती। जैसे नेत्र में काजल होता है, किन्तु वह अत्यन्त समीप होने से नहीं दीखता। दूसरे बहुत दूर होने से--जैसे देहली काशी से नहीं दीखती, क्योंकि वह बहुत दूर है। तीसरे अतिसूक्ष्म होने से--जैसे सूक्ष्म होने से परिमाणु दृष्टि में नहीं आते, चौथे अतिस्थूल होने से हिमालय पर्वत सम्पूर्ण नहीं दीखता। पाँचवें वस्तु और इन्द्रियों के बीच में व्यवधान होने से—जैसे आँख पर हाथ रखने से कोई वस्तु नहीं दीखती, अथवा जैसे

दीवार के दूसरी ओर की वस्तु नहीं दीखती। छठे-इन्द्रियों में दोष आ जाने से—जैसे अन्धे को रूप का ज्ञान नहीं होता, बहरे को शब्द का ज्ञान नहीं होता इत्यादि। सातवें—मन के अव्यवस्थित होने से—नेत्रों के सामने आ जानेवाली वस्तुओं का भी ज्ञान नहीं होता।

जब इन सात दशाओं में विद्यमान वस्तु का भी प्रत्यक्ष नहीं होता, तो केवल प्रत्यक्ष न होने से ईश्वर का न होना सिद्ध नहीं हो सकता। जब कि ईश्वर के होने में अनुमान और शब्दप्रमाण विद्यमान हैं।

निमित्त कारणता।

जैसे प्रकृति में क्रिया तब तक ही होती है, जब तक चेतन उसको क्रिया देता रहे। जिसका प्रमाण मृतक और जीवित शरीर को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है, अर्थात् जब तक क्रिया देने वाला—चेतन क्रिया दे रहा था, तब तक यह शरीर क्रिया करता रहा, और जब चेतन पृथक् हो गया, तब वह शरीर जो प्रकृति से बना था, क्रियाशून्य हो गया। इससे स्पष्ट ज्ञान होता है—कि प्राकृत वस्तु में क्रिया चेतन के बिना नहीं हो सकती।

दूसरे जिस क्रिया में नियम पाया जाय, वह तो किसी प्रकार नियम बनानेवाले के बिना हो ही नहीं सकती। घड़ी को आप देखते हैं, उसमें बारह घण्टे की चाबी दी जाती है, तो बारह घण्टे के पश्चात् अपने उसी स्थान पर आ जाती है, और जो एक सप्ताह में चाबी लेती है, वह एक सप्ताह में उसी स्थान पर आ जाती है।

महानुभाव !

कोई भी व्यक्ति जिसको थोड़ी-सी भी बुद्धि हो, घड़ी की उत्पत्ति मानकर किसी अचेतन शक्ति द्वारा बनाई हुई नहीं मानता। यद्यपि घड़ी बनानेवाले को घड़ी बनाते हुए प्रत्यक्ष नहीं देखा। परन्तु अनुमान से घड़ी के कर्ता का होना उसे निश्चय हो जाता है। क्योंकि

स्वाभाविक क्रियावाली वस्तु में लौटकर उसी स्थान पर आने का नियम हो नहीं सकता।

जैसे इञ्जन में भाप, कोयला, पानी के होने से वह ठीक चलता है, और किसी कल, पुर्जा, कोयला आदि के ठीक न रहने से रुक जाना भी सम्भव है। परन्तु अपने स्थान पर लौट आना किसी प्रकार सम्भव नहीं, जब तक कि कोई चेतन ड्राइवर उसको न लौटाये। इस कारण जिन वस्तुओं में कुछ दिनों के पश्चात् पुनः उसी स्थान पर आने की शक्ति है, वे अवश्य ही चेतन के नियम में बँधी हैं।

सृष्टि के सम्पूर्ण भूगोल-नियम के अधीन देखने में आते हैं, जैसे कि हम इस निबन्ध में पहले लिख चुके हैं। अतिसूक्ष्म या अतिसमीप होने के कारण हम प्राकृत जन आँखों से परमात्मा को नहीं देख सकते, परन्तु उसके नियमित कामों को देखकर उसकी सत्ता का अनुमान कर सकते हैं। जैसे घड़ी के बनानेवाले को अपने आँखों से न देखकर भी हमें मानना पड़ता है।

सर्वव्यापकता -एवं साक्षात्कार।

कोई व्यक्ति कहे कि ईश्वर कहाँ है--तो कहाँ शब्द एकदेशी के लिये होता है, व्यापक के लिए नहीं। लोग ईश्वर को देखना चाहते हैं, किन्तु उसको इन आँखों से देख नहीं सकते। उसको ज्ञान के द्वारा ही देख सकते हैं, यदि शीशा मैला हो, तो कभी अपना चेहरा नहीं देखा जा सकता। चेहरे को देखने के लिये शीशे का स्वच्छ होना आवश्यक है।

इस पर एक उदाहरण है–कि एक महात्मा भिक्षा माँगने के लिए एक घर में गये, घर की देवी ने कहा, महाराज ! हमने सुना है, महात्मा लोग परमात्मा के दर्शन कराते हैं, महात्मा ने उत्तर दिया, बहिन! ८ दिन के पश्चात् मैं आपको परमात्मा का दर्शन कराऊँगा। ठीक आठ दिन के पश्चात् महात्मा ने भिक्षा के लिए

पुकारा, देवी बड़ी प्रसन्नता के साथ कुछ आटा कुछ चावल, दाल लेकर आई। महात्मा ने चिप्पी आगे की, किन्तु चिप्पी में गोबर और कांटे भरे हुए थे। देवी बोली, महाराज! इसमें तो गोबर और कांटे भरे हुए हैं, मैं इसमें आटा, चावल कैसे डालूँ। तब महात्मा ने कहा, भोली बहिन! जब आप दो चार आने का सामान इसमें नहीं डाल सकतीं, तो मैं उस परब्रह्म परमात्मा का इस मलिन अन्तःकरण में कैसे दर्शन कराऊँ।

पाठकवृन्द! आप विचार करें—यदि अन्धा रूप को देखना चाहे, तो उसे कौन दिखला सकता है, जब तक आँख का सुधार न होवे, बहरा राग सुनना चाहे, गूँगा मिठाई का स्वाद बतलाना चाहे, नासिका के दोषवाला फूल की सुगन्धि लेना चाहे, तो कैसे ले सकता है, जब तक इन इन्द्रियों का सुधार न हो। जैसे तिलों में तेल, दधि में घी होने पर भी विना साधनों के उसको देख नहीं सकते, इसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा हमारे अन्दर और बाहर सर्वत्र विद्यमान है, परन्तु अन्तःकरण की शुद्धता आदि साधनों के विना हम उसको नहीं जान सकते। उसे दूसरे स्थानों में ढूँढने की आवश्यकता नहीं। यदि उसको अपने ही हृदय में ध्यान लगाकर देखें, तो उस प्रकाशमान् सुन्दरज्योति के दर्शन अपने ही अन्तःकरण में कर सकते हैं, जो लाखों सूर्यों के प्रकाश से भी अधिक प्रकाशमान दिव्यज्योति जगमगा रही है। जिसके नियम से यह प्रकृति अपना कार्य कर रही है और वह असंख्य जीवों को उनके अपने ही किये हुए कर्मों द्वारा नाना प्रकार के शरीर धारण करा रहा है, और ईश्वर इस जीव और प्रकृति के द्वारा ही इस जगत् की रचना करता रहता है। यह स्पष्ट स्वरूप से सादि और प्रवाहरूप से अनादि है, अर्थात् इसका न आदि है और न अन्त। परमात्मा इन सृष्टियों की अनन्तकाल से प्रकृति और जीव के द्वारा ही रचना करता रहता है। इस जगत् का निमित्तकारण—ईश्वर, उपादान कारण प्रकृति, और जीव साधारण कारण है।

उपासना।

अब यहाँ प्रश्न होती है—कि यदि ईश्वर को मान भी लिया जाय, तो उसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है। इसका उत्तर यह है-कि प्राप्ति उस वस्तु की होती है, जो पहिले दूर हो। परमात्मा हमारे अन्दर सदा ही विराजमान है, तो प्राप्ति किस की। देखिये दूरी ३ प्रकार की होती है। देश दूरी, काल[2] दूरी और ज्ञान[3] दूरी।

१—ईश्वर सर्वव्यापक है, अतः देश की दूरी नहीं हो सकती। वह नित्य है, अतः काल की भी दूरी नहीं हो सकती। हाँ जीवात्मा अपने अज्ञान के द्वारा उसको जानता नहीं, इस कारण ज्ञान की दूरी हो सकती है। वह सत्य ज्ञान, जो कि आदि सृष्टि में प्राप्त हुआ है, उसी के अध्ययन और सत् पुरुषों के सत्सङ्ग से वह ज्ञानसम्बन्धी दूरी दूर हो सकती है। अतः हमें नित्यप्रति सन्ध्या, ईश्वरोपासना और सत्सङ्ग करना चाहिये।

प्र०—अब यहाँ एक प्रश्न होता है कि उपासना किसे कहते हैं? उपासना किस की और क्यों करनी चाहिये?

उ०—उपासना के अर्थ समीप में बैठने के हैं। जब हमें गर्मी सताती है, तब हम जल और ठण्डी वायु की उपासना करते हैं। और जब सर्दी सताती है, तब हम अग्नि और उष्ण वस्त्रों की उपासना करते हैं, अर्थात् उनको पहनते हैं।

जीवात्मा का केवल दो प्रकार की शक्तियों से सम्बन्ध रखता है, एक प्रकृति, और दूसरा परमात्मा। जीव सुख-दुःख दोनों से रहित है। और परमात्मा आनन्दस्वरूप (आनन्दरूप) है, तो अब दुःख का आधार प्रकृति के अतिरिक्त कौन हो सकता है। जब प्रकृतिजन्य विषयों से दुःख मिलता है, तो आनन्द की प्राप्ति के लिए परमात्मा की ओर ध्यान आकृष्ट होता है।

दैनिक-उपासना।

यहाँ प्रश्न होता है—कि जब एक बार परमात्मा को प्राप्त कर लिया, तो नित्यप्रति परमात्मा की उपासना की क्या आवश्यकता है। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ, कि जब सर्दी में उष्ण वस्त्र पहन कर आपका शरीर उष्ण हो जाता है। तब आप उष्ण वस्त्र उतार देते हैं; पुनः ठण्डक लगने पर क्या? वस्त्र नहीं पहन लेते। अतः इसी भाँति नित्यप्रति उपासना की आवश्यकता होती है। सारांश यह है कि हमें इन जन्म मरणरूपी दुःखों से छुटकारा पाने के लिए उस आनन्दस्वरूप (आनन्दमय) परमात्मा की नित्यप्रति उपासना करनी चाहिये। तभी हम मोक्ष की प्राप्ति कर सकते हैं, यही हमारे जीवन का मुख्य उद्देश्य है।

महानुभाव! आओ। इस सुन्दर अवसर पर हम और आप मिल कर अपनी जीवन यात्रा को पवित्र करें अर्थात् सफल बनावें। और उस महान् प्रभु, जिसका कि यहाँ वर्णन किया गया है, उससे प्रार्थना करें, कि वह हम सबको सद्बुद्धि प्रदान करे। जिसके कि द्वारा हम उसको जान कर अपने इस मनुष्य-शरीर को सफल बनावें। केनोपनिषद् में भी लिखा है—

"इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन् महती बिनष्टिः। भूतेषु भूतेषु बिचित्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति"॥
के०। उ०। २ खं०। ५ श्लो०।

अर्थात् हे प्राणी इस मनुष्य शरीर को लेकर यदि तूने उस प्रभु को पहचान (जान) लिया, तो निश्चय समझ ले, कि तेरा मनुष्यशरीर लेना सत्य है। और यदि इस मनुष्यशरीर को लेकर भी तूने उस परमपिता परमात्मा को न जाना, तो जान ले—कि तेरा सर्वनाश हो गया। इसी बात को मन में विचार कर धीर-गम्भीर-ज्ञानी-पुरुष सम्पूर्ण भूतों मे उसकी सत्ता का अनुभव कर इस लोक से बिदा हो कर मोक्ष को प्राप्त करते हैं। ओ३म् खं ब्रह्म।

प्रमाणों द्वारा संसार का सत्यत्व
तथा
ईश्वर जीव की पृथक्ता।

ज्ञातव्यविषय।

(१) ईश्वर सत्, चित्, आनन्दस्वरूप है, वह न कर्म करता है न भोगता है, वह कर्मों के फल को देनेवाला है।

(२) जीव सत् चित् है, कर्म करता है और फलों को भोगता है। यही जीव जन्म-मरण रूपी चक्र में आता है। जीवों की कोई गिनती नहीं, असंख्यात हैं।

(३) प्रकृति तीन गुणोंवाली है, सत्व गुण-प्रकाशकरनेवाली, रजोगुण–न प्रकाशकरनेवाली और न ढापनेवाली, परन्तु प्रवृत्तिकरनेवाली। तमोगुण-ढापनेवाली है, और उसी के स्वरूप से जगत् उत्पन्न किया जाता है।

(४) वेद चार हैं, ऋग्, यजु, साम, अथर्व। ऋग् का ऋषि अग्नि, यजुर् का वायु, सामवेद का आदित्य और अथर्व का अङ्गिरा, इन चार ऋषियों के द्वारा आदि सृष्टि में परमात्मा ने वेद का ज्ञान दिया, जिसमें सृष्टि का सम्पूर्ण ज्ञान है।

(५) ऋग् में ज्ञान, यजुर् में कर्मकाण्ड और साम में उपासना एवं संगीत, अथर्व में विज्ञान और चिकित्सा है।

(६) प्रमाणिक उपनिषदें ग्यारह है। १-ईश २-केन ३-कठ ४-प्रश्न ५-ऐतरेय ६-तैत्तिरीय ७-मुण्डक ८-माण्डूक्य ९-छान्दोग्य १०-बृहदारण्यक ११-श्वेताश्वतर।

यह उपनिषदें वेद के आधार प र मानी जाती हैं। जिनमें ब्रह्म ज्ञान का वर्णन उदाहरणों के साथ किया गया है।

दर्शन ६ हैं।

(७) पहला दर्शन न्याय है। जिसको महात्मा गौतम ऋषि ने बनाया है, इसमें प्रमाणवाद पर ही विचार किया गया है। और इसमें प्रमाण प्रमेय आदि सोलह पदार्थों की व्याख्या की है।

दूसरा दर्शन वैशेषिक है, जिसको महात्मा कणाद ऋषि ने बनाया है। इस दर्शन में ६ बातों का वर्णन किया है। (१) द्रव्य (२) गुण (३) कर्म (४) सामान्य (५) विशेष (६) समवाय। इस प्रकार प्रमेयवाद की व्याख्या की गई है।

तीसरा दर्शन सांख्य है। जिसको महर्षि कपिल ने बनाया है, और उसमें जगत् का उपादान कारण प्रकृति सिद्ध किया है। परन्तु प्रकृति जड़ है, और इसका संयोग दुःख देनेवाला है। इस कारण प्रकृति और पुरुष का विवेक कर जड़ और चेतन को पृथक् पृथक् करके अच्छे प्रकार अपने विषय को सिद्ध किया है।

चौथा दर्शन योग है, जो कि महर्षि पतन्जलि ने लिखा है। उन्होंने चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करने की प्रबल प्रेरणा की है, और उनके एकाग्र करने के साधन यह बताये हैं, १-यम २-नियम ३-आसन ४-प्राणा-याम ५-प्रत्याहार ६-धारणा ७-ध्यान ८-समाधि, इसके द्वारा ही जीवात्मा परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है, यह सिद्ध किया है।

पांचवां दर्शन मीमांसा है। जो कि महर्षि जैमिनि जी महाराज ने लिखा है। जिसमें उन्होंने मल विक्षेप को दूर करने के साधन शुभ कर्म, दान आदि बतलाये हैं, जिससे कि अन्तःकरण की भले प्रकार से शुद्धि हो जावे।

छठा दर्शन वेदान्त है, जिसको महात्मा व्यास ऋषि ने लिखा है। और जिसमें ब्रह्म का सम्पूर्ण-ज्ञान विस्तार-रूप से वर्णित किया गया है।

ब्रह्म किसको कहते हैं।

बन्धुवर्ग !

अब शङ्का यह होती है कि ब्रह्म किसको कहते हैं। इस प्रश्न का उत्तर हम अपने शब्दों में न देकर महर्षि व्यास और वेद के शब्दों के द्वारा ही देते हैं। जिससे कि पाठकों को पूर्णतया निश्चय हो जाय, और किसी को कोई सन्देह न रहे। देखिये—'वेदान्त दर्शन' के प्रथम सूत्र "अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" में जब यह शङ्का हुई—कि ब्रह्म किसको कहते हैं, तो ऋषिप्रवर महर्षि व्यास उसका उत्तर "जन्माद्यस्य यतः" इस द्वितीय सूत्र के द्वारा स्वयं देते हैं, अर्थात् जो इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कर्ता है, वही ब्रह्म (ईश्वर) है। आशय यह निकला कि संसार को पैदा करनेवाला, और उसका पालन करनेवाला, तथा यथासमय उसका प्रलय करनेवाला जो है, बस वही ब्रह्म अर्थात् ईश्वर है। इस सूत्र के आगे तीसरे सूत्र "शास्त्रयोनित्वात्" का भी यही अभिप्राय है—कि जिसने ऋग्वेदादि सच्छास्त्रों को जन्म दिया, वही ब्रह्म है।

यही आशय यजुर्वेद के ३१ वें अध्याय के समय—"तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे" इत्यादि मन्त्रों में प्रकाशित है, अर्थात् जिसने ऋग्वेदादि वेदों को और अश्व-गो-पशु-पक्षी आदि को पैदा किया, बस वही परमेश्वर (ब्रह्म) है। यजुर्वेद के ४० वें अध्याय के ८ वें मन्त्र "स पर्यगात्" इत्यादि में तो स्पष्ट लिख दिया है-कि वह सर्वव्यापक, सबसे महान्, तीनों प्रकार के शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म, कारण) से रहित, सर्वसामर्थ्यवान्, अनादि और अनन्त है-इत्यादि। अतः ब्रह्म किसको कहते हैं, इसका उत्तर सूक्ष्मरूप से भली भांति हो

चुका, जिसको कि पाठकवृन्द समझ गये होंगे। अब इसके आगे इसी से सम्बद्ध दूसरे विषय को लेते हैं।

संसार सत्य है।

महानुभाव !

वेदादि शास्त्रों ने परमेश्वर को 'सत्यकामः, सत्यसंकल्पः, अजरः' इत्यादि शब्दों से पुकारा है। इसका अभिप्राय यह निकला कि परमेश्वर के संकल्प इच्छा और कार्य सब सत्य होते हैं। क्योंकि श्रुति आदि ने बार २ सत्य शब्द का प्रयोग किया है।

अब विचारने की बात यह है, कि यह विश्व भी उसी परमात्मा ने अपने संकल्प से बनाया है। क्योंकि "स ऐक्षत" इत्यादि श्रुतियों का यही अभिप्राय है--कि परमेश्वर ने सृष्टि रचने का संकल्प आदि किया। और यह युक्तियुक्त और सर्वसम्मत भी है, कि प्राणियों को स्वस्वकर्मानुकूल फल भुगाने के लिए परमात्मा ने सृष्टिरचना का संकल्प कर उसको रचा। और इसी आशय की पुष्टि उपर्युक्त वेदान्त सूत्र 'जन्माद्यस्य यतः' से महर्षि व्यास ने भी की है, जैसा कि अभी ऊपर लिख चुके हैं। और ठीक भी है, क्योंकि लोक में प्रत्येककर्ता संकल्प पूर्वक ही अपने कार्य को करता है। अतः यह सिद्ध हो गया-- कि परमेश्वर ने संकल्प पूर्वकसृष्टि को रचा।

सत्यता में प्रमाण।

विद्वद्वर !

जब श्रुति, शास्त्र आदि प्रमाणों से यह सिद्ध हो गया-कि परमेश्वर संकल्पपूर्वक सृष्टि रची। तो परमेश्वर का संकल्प कभी झूठा तो हो ही नहीं सकता। जैसा कि अभी ऊपर "सत्यकामः" इत्यादि श्रुति से कहा गया है। तब सोचिये-कि यह संसार कैसे झूंठा हो सकता है। यदि संसार को झूठा माने, तो परमेश्वर के संकल्प और कर्म को भी

झूठा मानना पड़ेगा। और झूठे संकल्पादिमान् पुरुष की भांति ईश्वर का भी कोई अस्तित्व न रह जायगा। अतः संसार को तीनों कालों में असत् अर्थात् झूठा कहनेवाले स्वयं ही झूठे और वेद शास्त्र से अनभिज्ञ हैं।

दूसरी युक्ति यह है--कि महर्षि व्यास को यदि संसार का असत्यत्व इष्ट होता, या उसको वेदानुकूल समझते, तो कम से कम अपने दर्शन में 'ब्रह्म सत्यं जगन् मिथ्या' यह, अथवा इस प्रकार का कोई सूत्र तो अवश्य लिख देते। परन्तु ऐसा उन्होंने नहीं किया, प्रत्युत 'जन्मा-द्यस्य यतः' इत्यादि सूत्रों के द्वारा ब्रह्म से जगत् की उत्पत्ति बताकर उसको सत्य सिद्ध किया है।

तीसरी युक्ति यह है कि-'प्राप्तौ सत्यां निषेधः' अर्थात् प्राप्त वस्तु का निषेध होता है। यदि वस्तु हो ही नहीं, तो निषेध किसका किया जायगा। इसी प्रकार यदि संसार तीनों कालों में नहीं, तो निषेधवादी निषेध किसका करता है।

चौथी युक्ति यह है—कि संसार को मिथ्या कहनेवाला "शुक्ति-रूप्य" (सीपी में चांदी) का दृष्टान्त देता है---कि जैसे सीपी में चांदी का चमकना मिथ्या है, उसी भांति यह संसार का दीखना भी मिथ्या है।

शुक्ति प्य, रज्जुसर्प।

प्रिय सज्जन !

यहां यह विचार करने की बात है—कि दृष्टान्त में जिस रूप्य (चांदी) को शुक्ति (सीपी) में मिथ्या कहा गया है, वह रूप्य (चांदी) कहीं सत्यरूप से अवश्य है, अर्थात् सुनार (सर्राफ) की दुकान में उस की सत्यता विद्यमान है। इसी भांति उस दृष्टान्त के

आधार पर यदि वादी संसार को मिथ्या सिद्ध करता है, तो उस संसार की कहीं न कहीं सत्यता अवश्य होनी ही चाहिये।

इसी प्रकार 'रज्जुसर्प' (रस्सी में सांप) इत्यादि दृष्टान्तों में भी समझना चाहिये, अर्थात् रस्सी में सांप भले ही मिथ्या हो, पर उसकी सत्यता अन्यत्र (वमि के सांप में) विद्यमान है।

अतः वादी के उक्त दृष्टान्त भी संसार को मिथ्यात्व सिद्ध न कर सके।

इस कारण संसार सत्य है, संसार को मिथ्या कहनेवाले स्वयं ही मिथ्यावादी और मायावी हैं।

पांचवी युक्ति यह है—कि यदि संसार मिथ्या है, तो वेद, शास्त्र सब वृथा हो जावेंगे। धर्मशास्त्र के स्वर्ग-नरकादि सब कपोलकल्पित माने जावेंगे। वेदान्तदर्शन के बताये गये अर्चिरादि मार्ग आदि सब झूंठे सिद्ध हो जावेंगे।

छठी युक्ति यह है—कि जो वादी संसार को मिथ्या कह रहा है, उसका कहना और वह स्वयं मिथ्या है या नहीं।

यदि मिथ्या है, तो उसके कहने का कोई प्रभाव ही नहीं हो सकता। क्योंकि वह मिथ्या है। और उसका कहना भी नहीं बन सकता। क्योंकि वह स्वयं मिथ्या है।

यदि कहो—कि सत्य है, तो उसको संसार के मिथ्यात्व कहने में क्यों नहीं लज्जा आती। क्या वह वादी संसार से बाहर है।

मायावी की माया।

मायावी का दृष्टान्त देकर, अर्थात् जैसे मायावी (बाजीगर-ऐन्द्रजालिक अपनी माया से झूंठ मूंट ही सब चीज बनाकर दिखा देता है, इसी भाँति ब्रह्म भी अपनी माया से झूठा संसार बना देता है।

सुख-दुःख को स्वेच्छानुसार भोगने में असमर्थ है, अर्थात् निकृष्ट कर्म करके स्वेच्छया स्वर्गादि फल नहीं भोग सकता। अतः शुभ कर्मानुसार ईश्वर से प्रेरित हुआ ही स्वर्गादि को प्राप्त होता है, जैसे कि एक घोड़ा वाहक (चलानेवाले) की प्रेरणा से ही यथास्थान पहुँच सकता है। इसका अभिप्राय यह है—कि नियन्ता के नियम में उसको रहना पड़ता है। महानुभाव ! यदि ब्रह्म (परमेश्वर) से जीव पृथक् न होता तो ब्रह्म अर्थात् ईश्वर किस को प्रेरित करता।

स्मृति।

श्रद्धास्पद प्रेमिजन !

ये तो रहीं श्रुतियां, अब वादिसम्मत स्मृति के भी स्वल्प प्रमाण दिखलाते हैं, देखिये—

अश्वमेध कर्म प्रकरण में व्यास लिखते हैं कि—

नहि कश्चिदयं मर्त्यः स्ववशः कुरुते क्रियाः।
ईश्वरेण प्रयुक्तोऽयं साध्वसाधु च मानवः॥

अर्थात् कोई भी जीव कर्म करके स्वतन्त्रतया फल भोक्ता नहीं हो सकता। पूर्व कर्मानुसार ईश्वर से प्रेरित होकर ही मनुष्य (जीव) साधु अथवा असाधु फल का भोक्ता होता है। भगवन् ! यदि ईश्वर से जीव पृथक् न होता, तो ईश्वर फल भुगाने के लिए किसको प्रेरणा करता।

अपरञ्च—“करोति पुरुषः कर्म तत्र का परिदेवना” अर्थात् पुरुष (जीव) जैसा कर्म करता है वैसा फल भोगता है, इसमें विचार करने की क्या बात है। श्रीमन् ! यदि जीव न होता तो कौन कर्म करता।

भगवद्गीता।

अपि च—भगवद्गीता में लिखा है कि—

'भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः" अर्थात् जीवों को फल भुगानेके लिए नाना प्रकार के पदार्थ मेरे (परमेश्वर) द्वारा पैदा होते हैं इत्यादि। मित्रवर ! यदि ब्रह्म (परमेश्वर) से जीव पृथक् न होता तो ब्रह्म ईश्वर किस के लिए पदार्थ बनाता।

विद्वद्वर्ग ! अब विस्तार के भय से हम यहीं विराम लेते हैं। इतने से ही महानुभाव सज्जन समझ गये होंगे कि—ब्रह्म से जीव पृथक् है। ब्रह्म और जीव को एक कहनेवाले शास्त्रानभिज्ञ होने के कारण भ्रम में पड़े हुए हैं। अतः उनके इस वाग्जाल में किसी भी भाई को नहीं फंसना चाहिये।

(८) "पुराण"—जो ब्रह्मादि के बनाये ऐतरेयादि 'ब्राह्मण' ग्रन्थ हैं, वे ही पुराण, इतिहास कल्प गाथा और नाराशंसी नाम से माने जाते हैं। ऐसा लोग मानते हैं।

(९) *उपादान कारण*—जिसको ग्रहण करके ही उत्पन्न होवे, वा कुछ बनाया जाय, जैसे कि मिट्टी से घड़ा बनता है, उसको उपादान कारण कहते हैं।

(१०) *निमित्तकारण*—जो बनाने वाला है जैसे कुम्हार घड़े को बनाता है, इस प्रकार के पदार्थों को निमित्त कारण कहते हैं।

(११) *साधारण कारण*—जैसे कि दिशा आकाश तथा प्रकाश आदि हैं, इनको साधारण कारण कहते हैं।

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

दूसरा प्राप्ति स्थान—

महाशय जीवनदास

आर्य समाज बुलानाला काशी।

भजन।

हुआ ध्यान में ईश्वर के जो मगन, उसे कोई क्लेश लगा न रहा।
जब ज्ञान की गङ्गा में नहाया, तो मन में मैल जरा न रहा ॥
परमात्मा को जब आत्मा में, लिया देख ज्ञान की आँखों से।
प्रकाश हुआ मन में उसके, कोई उससे भेद छिपा न रहा ॥
पुरुषार्थ ही इस दुनियां में, सब कामना पूरी करता है।
मन चाहा फल उसने पाया, जो आलसी बन के पड़ा न रहा ॥
दुःखदायी हैं सब शत्रु हैं, यह विषय हैं जितने दुनियां के।
नहीं पार हुआ भवसागर से, जो जाल में इनके फसा न रहा ॥
यहां वेद विरुद्ध जब मत फैले, प्रकृति की पूजा जारी हुई।
जब वेद की विद्या लुप्त हुई, फिर ज्ञान का पांव जमा न रहा ॥
यहां बड़े बड़े महाराज हुए, बलवान् हुए विद्वान् हुए।
पर मौत के पंजे से "केवल" कोई दुनियां में आके बचा न रहा ॥

प्रभु भक्ति।

शरण प्रभु की आओ रे ! यही समय है प्यारे।
आओ प्रभु गुण गाओ रे ! यही समय है प्यारे ॥

उदय हुआ ओ३म् नाम का भानु आओ दर्शन पाओ रे ॥१॥
अमृत झरना झरता इससे, पी के अमर हो जाओ रे ॥२॥
छल कपट और द्वेष, को त्यागो, सत्य में चित्तलगाओ रे ॥३॥
हरि की भक्ति बिन नहीं मुक्ति, दृढ़ विश्वास जमाओ रे ॥४॥
कर लो नाम प्रभु का सुमिरन, अन्त को ना पछताओ रे ॥५॥
छोटे-बड़े सब मिल के खुशी से, गुण ईश्वर के गाओ रे ॥६॥

आर्य समाज के नियम

१–सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है।

२–ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

३–वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

४–सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये।

५–सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

६–संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७–सब से प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्त्तना चाहिये।

८–अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९–प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिये।

१०–सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

अमरवाणी यन्त्रालय, शारदाभवन, अगस्त्यकुण्डा काशी।